

राजस्थान उच्च न्यायालय की जयपुर पीठ के लिए

डी.बी. सिविल रिट याचिका संख्या 15042/2020

1. भारत संघ, सचिव (श्रम), श्रम एवं रोजगार मंत्रालय, श्रम शक्ति भवन, रफी मार्ग, नई दिल्ली-110001 के माध्यम से।
2. कर्मचारी भविष्य निधि संगठन, अध्यक्ष, केंद्रीय न्यासी बोर्ड (ईपीएफ) एवं श्रम एवं रोजगार मंत्रालय, भारत सरकार, श्रम मंत्रालय, श्रम शक्ति भवन, रफी मार्ग, नई दिल्ली 110001 के माध्यम से।
3. श्री राजेश बंसल, अतिरिक्त केंद्रीय भविष्य निधि आयुक्त एवं जाँच अधिकारी, क्षेत्रीय कार्यालय, पंजाब एवं हिमाचल प्रदेश राज्य, एससीओ 4-7, सेक्टर-17 डी, चंडीगढ़।

----याचिकाकर्ता

बनाम

एस.के. भार्गव पुत्र स्वर्गीय श्रीराम भार्गव, उम्र लगभग 65 वर्ष, निवासी 2, विवेकानन्द नगर, रेलवे।
क्रॉसिंग, झोटवाड़ा, जयपुर-12, राजस्थान, क्षेत्रीय पी.एफ. के पद से सेवानिवृत्त। आयुक्त (ग्रेड 1)

----प्रतिवादी

याचिकाकर्ता (ओं) के लिए : श्री राम करण वर्मा
प्रतिवादी (ओं) के लिए : श्री मुकेश कुमार अग्रवाल

माननीय श्रीमान. जस्टिस अवनीश झिंगन
माननीय श्रीमान. जस्टिस आशुतोष कुमार
आदेश

25/09/2024

अवनेश झिंगन. जे:

1. यह याचिका केंद्रीय प्रशासनिक न्यायाधिकरण, जयपुर पीठ, जयपुर (संक्षेप में 'न्यायाधिकरण') द्वारा पारित दिनांक 20.04.2017 के आदेश से व्यथित होकर दायर की गई है।
2. प्रासंगिक तथ्य यह है कि प्रतिवादी क्षेत्रीय भविष्य निधि आयुक्त (ग्रेड-I) के पद से सेवानिवृत्त हुए और संबंधित समय में एसआरओ, गुरुग्राम के प्रभारी अधिकारी के रूप में कर्तव्यों का निर्वहन कर रहे थे। श्री शिव जी से एक शिकायत प्राप्त हुई थी जिसमें कहा गया था कि मेसर्स एम डी पैकेजिंग (संक्षेप में 'नियोक्ता') उन्हें कर्मचारी भविष्य निधि (संक्षेप में 'ईपीएफ') का लाभ नहीं दे रहा है। दिनांक

01.04.2008 के आदेश के तहत जांच के बाद, 22.09.1997 से जुलाई, 2004 की अवधि के लिए ईपीएफ की 5,03,608/- रुपये की राशि नियोक्ता से देय पाई गई। ईपीएफ विभाग के अनुसार, नियोक्ता को 12.04.2004 से कर्मचारी भविष्य निधि और विविध प्रावधान अधिनियम, 1952 (संक्षेप में 'अधिनियम') की धारा 1 (3) (ए) के तहत कवर किया गया था। अधिनियम की धारा 7 ए के तहत देय राशि 22.09.1997 से नियोक्ता पर अधिनियम लागू करने का परिणाम थी। 01.04.2008 के आदेश को पारित करते समय नियोक्ता द्वारा माफी के लिए दायर आवेदन को देय राशि जमा करने के बाद तय करने के लिए लंबित रखा गया था। 09.05.2008 को, प्रतिवादी द्वारा अधिनियम की धारा 7 सी के तहत नोटिस जारी किया गया था जिसमें कहा गया था कि मूल्यांकन की फाइल की समीक्षा करने पर कुछ चूक देखी गई है। प्रतिवादी ने 28.05.2008 को अधिनियम की धारा 7 सी के तहत एक आदेश पारित किया राशि माफ करते समय, यह माना गया कि नियोक्ता द्वारा 2,67,633 रुपये जमा किए गए थे और माफ की गई राशि नियोक्ता द्वारा नहीं काटी गई कर्मचारियों का हिस्सा थी। इसके अलावा, एक कर्मचारी श्री महेश गुप्ता ने भविष्य निधि अंशदान के अपने हिस्से को माफ करने का अनुरोध किया था। प्रतिवादी 31.12.2008 को सेवानिवृत्त हो गया और उसके बाद विभागीय कार्यवाही शुरू की गई। आरोप लगाए गए कि प्रतिवादी ने गुप्त उद्देश्य से देय राशि माफ करने के लिए अधिनियम के दायरे से बाहर जाकर कार्रवाई की। दूसरा आरोप यह था कि प्रतिवादी ने राशि माफ करने के लिए अधिनियम की धारा 7 सी के तहत शक्ति का प्रयोग करने में अधिकार क्षेत्र का उल्लंघन किया। प्रतिवादी द्वारा दायर मूल आवेदन (संक्षेप में 'ओए') को न्यायाधिकरण ने स्वीकार कर लिया और आरोपों को निराधार और अर्ध न्यायिक अधिकारी द्वारा नियत समय में कर्तव्य निर्वहन करते समय की गई कार्रवाई से संबंधित माना गया।

3. याचिकाकर्ता के विद्वान वकील ने प्रस्तुत किया कि प्रतिवादी द्वारा अधिनियम की धारा 7 सी के तहत जारी दिनांक 09.05.2008 का नोटिस कोई आधार नहीं देता था। तर्क यह है कि दिनांक 01.04.2008 के मूल्यांकन आदेश में, नियोक्ता द्वारा 31.03.2008 को जमा की गई 2,67,633 रुपये की राशि पर विचार नहीं किया गया था। यह तर्क दिया गया है कि प्रतिवादी के पास देय राशि माफ करने का कोई क्षेत्राधिकार नहीं था। इसके अलावा अधिनियम की धारा 7 सी द्वारा प्रदत्त क्षेत्राधिकार का अतिक्रमण अपने आप में प्रतिवादी के गुप्त उद्देश्य को इंगित करता है।

4. इसके विपरीत, रिट में देरी और अड़चनें हैं। तर्क यह है कि विभागीय कार्यवाही प्रतिवादी की सेवानिवृत्ति के डेढ़ वर्ष से अधिक समय बाद शुरू की गई थी। तर्क यह है कि विभाग ने प्रतिवादी द्वारा धारा 7 सी के तहत पारित आदेश को स्वीकार कर लिया था

5. इस तथ्य को कोई चुनौती नहीं दी जा सकती कि प्रतिवादी द्वारा 01.04.2008 को पारित मूल्यांकन आदेश, जिसमें 5,03,608/- रुपये की देय राशि का आकलन किया गया था, 22.09.1997 से अधिनियम को नियोक्ता पर लागू करने का परिणाम था। विभाग के अनुसार, इससे पहले भी, यह अधिनियम 12.04.2004 से नियोक्ता पर लागू था। देय राशि 22.09.1997 से जुलाई, 2004 की अवधि के लिए थी और नियोक्ता ने कर्मचारियों के वेतन से कर्मचारी के हिस्से की कटौती नहीं की थी।

6. याचिकाकर्ता के खिलाफ गुप्त उद्देश्य से राशि माफ करने के आरोप को न्यायाधिकरण ने सही ठहराया। न तो न्यायाधिकरण के समक्ष और न ही इस न्यायालय के समक्ष, अधिनियम की धारा 7-सी के तहत शक्ति का प्रयोग करने और राशि माफ करने में प्रतिवादी के गुप्त उद्देश्य को सिद्ध करने के लिए प्रथम दृष्टया सबूत का एक कण भी पेश नहीं किया गया है। यह तर्क कि धारा 7-सी के तहत आदेश पारित करने के आचरण और तरीके से गुप्त उद्देश्य स्वयं स्पष्ट था, में कोई दम नहीं है। प्रतिवादी की सेवानिवृत्ति के बाद, आधिकारिक कर्तव्यों के निर्वहन के दौरान पारित एक अर्ध न्यायिक आदेश के आधार पर विभागीय कार्यवाही शुरू की गई थी। यह आरोप कि प्रतिवादी ने गुप्त उद्देश्य से काम किया, निराधार था और एक धारणा थी।

7. पी.सी. जोशी बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य **(2001) 6 एससीसी 491** में भारत संघ और अन्य बनाम ए.एन. सक्सेना (1992) 3 एससीसी 124 में रिपोर्ट किए गए मामले में और भारत संघ और अन्य बनाम के.के. धवन (1993) 2 एससीसी 56 में रिपोर्ट किए गए मामलों में दिए गए निर्णयों पर विचार करने के बाद सर्वोच्च न्यायालय ने यह निर्णय दिया:

“7. वर्तमान मामले में, यद्यपि जाँच अधिकारी द्वारा विस्तृत जाँच की गई है, फिर भी न्यायिक पक्ष द्वारा अपीलकर्ता द्वारा दिए गए प्रत्येक आदेश की जाँच करके किसी भिन्न निष्कर्ष पर पहुँचने के अलावा, कोई भी उल्लेखनीय सामग्री सामने नहीं आई है। यह कि किसी दिए गए तथ्यों के आधार पर किसी भिन्न निष्कर्ष पर पहुँचने की संभावना थी, किसी न्यायिक अधिकारी को एक ही दृष्टिकोण अपनाने

के लिए, और वह भी केवल इसी कारण से कथित कदाचार के लिए, अभियोग लगाने का कोई आधार नहीं है। जाँच अधिकारी को कोई अन्य सामग्री नहीं मिली है, जिससे उसकी प्रतिष्ठा, सत्यनिष्ठा, सद्भावना या कर्तव्यनिष्ठा पर प्रश्नचिह्न लगे या यह पता चले कि वह किसी भ्रष्ट उद्देश्य से प्रेरित था। अधिक से अधिक वह यह कह सकता है कि अपीलकर्ता द्वारा लिया गया दृष्टिकोण उचित या सही नहीं है और उसे ऐसा कोई उद्देश्य न दे जो इस बात का बाहरी कारण हो कि उसने उस तरह से कार्य किया था। यदि प्रत्येक मामले में, जहाँ किसी अधीनस्थ न्यायालय का आदेश दोषपूर्ण पाया जाता है, अनुशासनात्मक कार्रवाई शुरू की जाए, तो अधीनस्थ न्यायपालिका का विश्वास डगमगा जाएगा और अधिकारी लगातार निर्णय लिखने से डरते रहेंगे ताकि उन्हें किसी प्रकार की सजा का सामना न करना पड़े। अनुशासनात्मक जाँच के बिना न्यायिक अधिकारी स्वतंत्र या निडर होकर कार्य नहीं कर सकते। वास्तव में, के.के. धवन मामले और ए.एन. सक्सेना मामले में चेतावनी दी गई है कि केवल इसलिए कि आदेश गलत है या की गई कार्रवाई अलग हो सकती थी, न्यायिक अधिकारी के विरुद्ध अनुशासनात्मक कार्यवाही शुरू करने का औचित्य नहीं है। इतनी सावधानी के बावजूद, यह दुर्भाग्यपूर्ण है कि उच्च न्यायालय ने इस मामले में अपीलकर्ता के विरुद्ध अनुशासनात्मक कार्यवाही शुरू करने का निर्णय लिया है।

8. जुंजरराव भीकाजी नागरकर बनाम भारत संघ (यूओआई) और अन्य (1999) एससीसी (एलएस) 1299 के मामले में सुप्रीम कोर्ट ने कहा:

"42. किसी अधिकारी के विरुद्ध अनुशासनात्मक कार्यवाही ऐसी सूचना के आधार पर शुरू नहीं की जा सकती जो अस्पष्ट या अनिश्चित हो। ऐसे मामले में संदेह की कोई भूमिका नहीं होती। अनुशासनात्मक प्राधिकारी द्वारा दोषी अधिकारी के विरुद्ध कार्यवाही करने के लिए उचित आधार मौजूद होना चाहिए। केवल इसलिए कि दंड नहीं लगाया गया था और बोर्ड ने अपनी शक्ति का प्रयोग करते हुए उस आदेश के विरुद्ध अपीलीय न्यायाधिकरण में अपील दायर करने का निर्देश दिया था, अपीलकर्ता के विरुद्ध कार्यवाही करने के लिए पर्याप्त नहीं हो सकता। ऐसा

कोई अन्य उदाहरण नहीं है जो दर्शाता हो कि इसी प्रकार के मामले में अपीलकर्ता ने अनिवार्य रूप से दंड लगाया हो।

43. यदि कानून की प्रत्येक त्रुटि कदाचार का आरोप बनती है, तो यह अपीलकर्ता जैसे अर्ध-न्यायिक अधिकारियों के स्वतंत्र कामकाज पर असर डालेगी। चूँकि संक्षेप में कदाचार का अनुमान अपीलकर्ता द्वारा कानून की त्रुटि करने से लगाया जाता है, इसलिए आरोप-पत्र प्रथमदृष्टया किसी भी कानूनी आधार पर आगे नहीं बढ़ता है जो इसे रद्द करने योग्य बनाता है। दूसरे शब्दों में, किसी अर्ध-न्यायिक प्राधिकारी के खिलाफ किसी भी आरोप-पत्र को बनाए रखने के लिए केवल कानून की गलती से अधिक कुछ आरोपित करना होगा, उदाहरण के लिए, अर्ध-न्यायिक आदेश को प्रभावित करने वाले कुछ बाहरी विचार की प्रकृति में। चूँकि इस तरह का कुछ भी आरोपित नहीं किया गया है, इसलिए आरोपित आरोप-पत्र अवैध हो जाता है। यदि आरोप-पत्र कायम रहता है, तो यह अर्ध-न्यायिक प्राधिकारी के विश्वास और स्वतंत्र कामकाज पर असर डालेगा। प्रशासनिक न्यायनिर्णयन की सम्पूर्ण प्रणाली, जिसके अंतर्गत प्रशासनिक प्राधिकारियों को अर्ध-न्यायिक शक्तियाँ प्रदान की जाती हैं, बदनाम हो जाएगी यदि ऐसे कार्य करने वाले अधिकारियों को अनुशासनात्मक कार्यवाही के निरंतर खतरे के कारण बिना किसी भय या पक्षपात के अपने कार्य करने से रोका जाए।

9. भारत संघ एवं अन्य बनाम के.के.धवन (सुप्रा) मामले में सर्वोच्च न्यायालय ने उस आधार को इंगित किया जिसके आधार पर अनुशासनात्मक कार्रवाई शुरू की जा सकती है:

“(i) जहाँ न्यायिक अधिकारी ने ऐसे तरीके से आचरण किया है जो उसकी प्रतिष्ठा या सत्यनिष्ठा या सद्भावना या कर्तव्य के प्रति समर्पण को दर्शाता है;

(ii) जहाँ उसके कर्तव्य निर्वहन में लापरवाही या कदाचार दर्शाने के लिए प्रथम दृष्टया सामग्री मौजूद है;

(iii) जहाँ उसने लापरवाही से कार्य किया है या उसने उन निर्धारित शर्तों का लोप किया है जो वैधानिक शक्तियों के प्रयोग के लिए आवश्यक हैं;

(iv) जहाँ उसने किसी पक्ष को अनुचित रूप से लाभ पहुँचाने के लिए कार्य किया है;

(v) जहाँ उसने भ्रष्ट सूचना द्वारा प्रेरित होकर कार्य किया है।

(जोर दिया गया)

10. एक अन्य पहलू जिस पर विचार किया जाना आवश्यक है, वह यह है कि अधिनियम की धारा 7-I के अंतर्गत, धारा 7C के अंतर्गत किसी भी प्राधिकरण द्वारा पारित आदेश से व्यथित कोई भी व्यक्ति न्यायाधिकरण के समक्ष अपील कर सकता है। वर्तमान मामले में, विभाग ने प्रतिवादी द्वारा पारित आदेश को स्वीकार कर लिया और अपील का विकल्प न अपनाते हुए, उसे अंतिम निर्णय लेने दिया।

11. इसके अतिरिक्त, आक्षेपित आदेश के विरुद्ध रिट याचिका तीन वर्ष और आठ महीने की अवधि के बाद दायर की गई है और इसमें विलंब और अड़चने हैं। रिट में एक अतिरिक्त हलफनामा दायर करने के बावजूद, याचिकाकर्ताओं ने याचिका दायर करने में हुई देरी के लिए कोई स्पष्टीकरण नहीं दिया है, जो स्वीकार करने योग्य तो बिल्कुल नहीं है। केवल यह कहा गया है कि मामले पर विचार करते समय देरी हुई और सतर्कता जांच शुरू की गई और लंबित है।

12. न्यायाधिकरण द्वारा पारित सुविचारित आदेश में हस्तक्षेप का कोई मामला नहीं बनता।

13. रिट याचिका खारिज की जाती है।

(आशुतोष कुमार), जे

(अवनीश झिंगन), जे

मोनिका चुघ/37

क्या रिपोर्ट योग्य है: हाँ

अस्वीकरण: इस निर्णय का अनुवाद स्थानीय भाषा में किया जा रहा है, एवं इसका प्रयोग केवल पक्षकार इसको समझने के लिए उनकी भाषा में कर सकेंगे एवं यह किसी अन्य प्रयोजन में काम नहीं ली जायेगी। सभी आधिकारिक एवं व्यावहारिक उद्देश्यों के लिए उक्त निर्णय का अंग्रेज़ी संस्करण ही विश्वसनीय माना जायेगा एवं निष्पादन एवं क्रियान्वयन में भी उसी को उपयोग में लिया जायेगा।



अधिवक्ता अविनाश चौधरी